International Journal of Applied Research 2014; 1(1): 278-281

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2014; 1(1): 278-281
www.allresearchjournal.com
Received: 21-10-2014
Accepted: 19-11-2014

विशाल कुमार झा
ब्लॉक नं.-21, ल्पॉट नं.-164
प्रेमचन्द्र मार्ग, राजेन्द्र नगर
पटना, बिहार, भारत

Corresponding Author:
विशाल कुमार झा
ब्लॉक नं.-21, ल्पॉट नं.-164
प्रेमचन्द्र मार्ग, राजेन्द्र नगर
पटना, बिहार, भारत

भाषा, छन्द एवं शैली का विवेचन का महत्त्व

विशाल कुमार झा

प्रस्तावनाः

भाष्यते लोकव्यवहारादि प्रयुज्यते या सा भाषा अर्थात् लोक व्यवहारों से प्रयुक्त शब्द और और तत्त्व का नाम भाषा है। व्युत्पत्ति भाष+टाप् (आ) भाषा प्रयुक्त दिशा में संस्कृत भाता का बोध होता है।

इस विशाल भूमण्डल पर जिस प्रदेश मे भी मनुष्यों का वास है जहाँ वे अपने सम्पूर्ण व्यक्तिगत तथा सामूहिक कार्य व्यवहार के लिए किसी न किसी भाषा का आश्रय लेते हैं। कोई भी व्यक्ति अपने ही देश में सौ दो सौ मील पैदल चलता जाय तो उसे इतनी विभिन्न प्रकार की भाषाओं के बोलनेवाले मिल जाा सकते हैं कि उनमें से कुछ भाषाओं को समझना भी कठिन हो जाता है। हिन्दी में एक सूक्ति प्रसिद्ध है-

''चार कोष पर पानी बदले, आठ कोष पर वानी।
बीस कोस पर पगड़ी बदले, तीस कोष पर छानी।

अर्थात् ''चार कोस या आठ मील पर पानी का स्वाद बदल जाता है। आठ कोष पर भाषा बदल जाती है। बीस कोष पर वेश विशेषतः पगड़ी बॉधने का ढंग बदल जाता है और तीस कोस पर छप्पर बनाने की शैली बदल जाती है।''

हमारे देश के अनेक साधु, महात्मा और तीर्थ करने वाले गुहस्थ पैदल ही चारों धाम की यात्रा करते हैं- (बदरीनाथ, बैद्यनाथ या जगन्नाथपुरी, रामेश्वर और द्वारका)।

यदि कोई व्यक्ति केवल काशी से प्रयाग तक ही पैदल विन्ध्यावासिनी का दर्शन करते हुए चले तो प श्च-क्रोशी की सीमा पर उनसे पूछा जायेगा 'कोहर जइब' (आप कहाँ जायेगे?) विन्ध्याचल पहुँचने पर भाषा बदल जाती है- केहर जाव्य', प्रयाग में 'कहाँ जावो'।

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि देश, काल एवं पात्र के अनुसार भाषा का परिवर्तन होता है।

भाष्+अङ्+टाप् = भाषा। वक्तृता। मनुस्मृति के आठवें अध्याय में धर्मशास्त्र और व्यवहार में अनुकूल सत्य कथन को भाषा की संज्ञा दी गई है।

अमरकोश में भाषा शब्द के पर्याय के रूप में, ब्राह्मी, भारती, भाषा, गीः, वाक्, वाणी एवं सरस्वती आदि शब्द व्यवहृत हुए हैं। दूसरे को अपने मन की बात बताना वाणी का प्रयोजन है। कतिपय विद्वानों के विचार से भाषा कवेल साधन है, अभिवक्ति का, साध्य नहीं है। भाषा वह साधन है सिके द्वारा कोई मनुष्य अपने मन के भाव, विचार, अनुभव और प्रतिक्रिया को वाणी के माध्यम से किसी दूसरे के प्रति या आत्मतुष्टि के लिए अभिव्यक्त करता है। मुख से निकले हुए सार्थक वर्णों के माध्यम से कोई भाव या विचार या कथनीय किसी दूसरे को व्यक्त किया जाय।

क्रमशः मानव ने मुख से निःसृत सार्थक वाणी के माध्यम से व्यवस्थित वर्णों के कुद लेस-सङ्केत बना लिए और इस प्रकार वाणी के दो रूप हो गये-

श्रव्यभाषा

कर्णभाषा (बोली जानेवाली वाणी या वर्ण)।

2. नेत्र की भाषा या वर्ण –

समाम्नाय (लिखित वाणी या अक्षर वाणी)। किन्तु दोनों परिस्थितियों मे वाणी ऐसा साधन बनी रही जिसके द्वारा या माध्यम से कोई व्यक्ति अपने भाव या विचार किसी दूसरे के प्रति व्यकत कर सके। अतः भाषा दूसरे के निमित्त बनी है, अपने लिए नहीं।

भाषा ऐसा मौखिक सङ्केत है जिसका कोई ऐसा अर्थ होता है जो दूसरे को बनाता अभीष्ट हो। आङ्गल भाषाविद बेले (1940), ब्राउनफील्ड (1954), विद्वानों के मत से वाणी के द्वारा केवल भाव, विचार मेकार्थी (1954), ब्रौकेनरिज और विन्सेन्ट (1955) प्रभृति और संवेदनाओं का ही आदान-प्रदान नहीं होता, अपितु इसका प्रयोग सूचना एकत्र करने, अपने तर्क के परिणाम अाीव्क्त करने, अपने भावों को व्यक्त करने, दसरों को कुछ कार्य करने की प्रेरणा देने, सामाजिकता की भावनाओं को सन्तुष्ट करने, व्यक्ति की अहं भावना को उद्दीप्त और मानवसमाज को एक सूत्र में आबद्ध करने के लिए भी होता है।

बाल्डरिथ (1949) का कथन है कि वाणी का व्यवहार बालक के संस्कार बनाने में सहायक होता है। यह व्यक्तिगत से सामाजिक बनाता है, सामाजिक धारणाएँ स्थिर करने में सहायता देता है, सामाजिक रीति-नीति प्रस्तुत कर उसका पथप्रदर्शन करता और नियन्त्रित करता है, उसे सूचना देता है, उसमें विचार, भाव और प्रवृत्ति भरता है, उसे सुरक्षित या अरक्षित होने का अनुभव कराता है- ये सब तथा अन्य अनेक प्रकार के प्रभाव भाषा के प्रयोग से बालक पर पड़ते हैं। इस प्रकार बालक की वाणी से उसकी जीवन व्यवस्था प्रभावित होती है और उसकी जीवन व्यवस्था से वाणी प्रभावित होती है।

वाणी की प्रक्रिया मातृकुक्षि से पूर्णतः सीखी हुई प्रतीत होती है क्योंकि मनुष्य का शिशु ऐसी शक्ति लेकर सम्भूत होता है कि वह अपने वातावरण के प्रति प्रतिक्रिया करके अपने व्यवस्था करता चल सके। सामान्यतः प्रत्येक बालक अपनी वाणी की प्रक्रिया बनाए रखने के लिए वाक्तन्तु (टवबंस बवतके), जीभ, दाँत, ओठ नाम और मुख विवर से युक्त उत्पन्न होता है इसके साथ-साथ वाणी की सहायता के लिए उसके शरीर में फेफड़े और डायफाम (पेट और छाती के बीच का भाग) भी होता है।

वाणी की उत्पत्ति में अनुकरण और आवृत्ति भी सहायक होती है। जैसे-जैसे मानव-शिशु बड़ा होता है, वैसे-वैसे उसकी अपनी वाण-शक्ति और दूसरों की वाणी समझने की शक्ति बढ़ती जाती है। बड़ी अवस्था में अधिक शीघ्रता से मनुष्य वाणी सीख सकता है।

नाद-ब्रह्म का सिद्धान्त

भारतवर्ष के मनीषियों, शब्द शास्त्रियों और दार्शनिकों ने भाषा को केवल साधन ही नहीं, साध्य भी माना है। उन्होंने स्पष्ट किया कि सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति ही प्रणव (ऊँ) या नाद-ब्रह्म से हुई और यह नाद-ब्रह्म ही सबके लिए ज्ञेय, प्राप्य या साध्य है जिसे प्राप्त कर लेने पर मानव पूर्णतः मुक्त और आनन्दमय हो जाता है और उसे कुछ अधिक जानना शेष नहीं रह जाता। इनता ही नहीं-

''एकः शब्दः सुप्रयुक्तः सम्यग्ज्ञातः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति।।''
अर्थात् एक भी शबद भलीभाँति अवगत और उसका समुचित प्रयोग करना किसी को आ जाने से स्वर्गलोक में भी वह इच्छित फल देने वाला सिद्ध होता है।

योगशास्त्र में नावब्रह्म के परिज्ञान के लिए अष्टाङ्ग-योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) साधने का विधान किया गया है। अष्टाङ्गयोग के साधकों का कहना है कि शरीर के भीतर समवस्थित षट्चक्र (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा) का भेदन कर मानव जब उस सहस्रार चक्र में प्राण को अधिष्ठित कर लेता है जहाँ परम ज्योति का प्रकाश फैला रहात है, तब उसे वहाँ परा वाणी अर्थात् अनाहत नाद का दिव्य संगीत सुनाई पड़ने लगता है। यदि वैज्ञानिक दृष्टि से इस सिद्धान्त को न माने और यह भी न माने कि नादब्रह्म या प्रण से विश्व की उत्पत्ति हुई है तथापि लाक्षणिक रूप में यह मानना पड़ेगा कि यदि वाणी न होती तो संसार के अस्तित्व का विवेचन किया ही नहीं जा सकता था। अतः संसार के अस्तित्व की सिद्धि का आधार भाषा ही है।

संसार में जिनी भी मनुष्य-जातियाँ हैं वे सब भाषा के द्वारा ही अपने मन के भाव व्यक्त करती हैं। इन सभी संस्कृत और असंस्कृत, सभ्य और असभ्य, ग्राम्य और अग्राम्य, प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध, वन्य और नागरिक भाषाओं में अपने-अपने कुछ विशेष परिगणित वर्ण होते हैं, किन्तु केवल संस्कृत के वैयाकरणों ने ही संस्कृत के वर्णो को और उनके आधार पर ही भारत की अन्य भाषाओं के वैयाकरणों ने अपनी भाषाओं में प्रयुक्त होने वाले वर्णों के उच्चारण स्थान के क्रम से व्यवस्थित कर लिया है।

जिन भाषा-भाषियाकें ने ऐसा नहीं भी किया। वे भी अपनी भाषा में प्रयुक्त होने वाले वर्णों के मेल से ऐसे सार्थक शब्द या वाक्य बना लेते है जिनके विशेष क्रमबद्ध मेल से लोग अपने इष्टभाव दूसरों पर प्रकर करके अपना सामाजिक व्यवहार चला लेते हैं। संस्कृत भाषा का वैशिष्ट्य है कि संस्कृत के सभी वर्ण केवल परस्पर मिलकर शब्द बनाने वाली ध्वनियाँ मात्र नहीं हैं। वे सभी वर्ण अपने में पूर्ण शब्द भी हैं। यह वैशिष्ट्य संसार की किसी अन्य भाषा में नहीं है। शिष्ट, समुन्नत और सुसस्कृत जातियों ने अपनी भाषा के वर्णो को विशेष क्रम से बाँधकर उनसे बने हुए शब्दों के अनेक अर्थ और प्रयोजन स्थितर किए, शब्दों की शक्ति बढ़ाई तथा उनके प्रयोगों में नवीनता और लाक्षणिकता को भर दिया। इस प्रकार के जिनते अधिक प्रयास जिन भाषा-भाषियों ने किए उनकी भाषाएँ उतनी ही अधिक स्थिर, शुद्ध, व्यवस्थित और सुव्याकृत हो गई। मनुस्य अपना मनोगत भाव अधिक से अधिक स्पष्टता, सूक्ष्मार्थता और विशदता के साथ दूसरे के प्रति व्यक्त करने लगा।

वार्तालाप, भाषण और लेखन के लिए वाणी की अभिव्यक्ति होती है। अभिव्यकित के तीन प्रकार हैं। अपनेमन के भाव को वाणी के द्वारा व्यक्त करने के तीन क्षेत्र हैं –

1. परस्पर बातचीत ।
2. भाषण या व्याख्यान के द्वारा जन-समूह को सम्बोधित करना ।
3. लिखना ।

वाणी दो प्रकार की होती है निरुक्ता और अनिरुक्ता। स्पष्ट श्रुतिगोचर तथा व्यक्त निरुक्ता वाणी है। अप्रकट और व्यकत्वाणी अनिरुक्ता हे। वैखरी वाणी निरुक्त होती है, मध्यमा वाणी कभी निरुक्ता और कभी अनिरुक्ता होती है। पश्यन्ती तथा परा वाणी केवल अनिरुक्ता होती है। वैखरी वाणी के भी दो प्रकार होते हैं -

व्याकृता तथा अव्याकृता। जिन वर्णो को मनुष्य ने सार्थक बनाकर अपने व्यवहार के लिए पारस्परिक बोलचाल का साधन बना लिया है और अपनी भाषा के विशेश नियमानुसार जिसका वे प्रयोग करते हैं उसे व्याकृता कहते हैं। शेष सभी ध्वनियाँ अव्याकृता है जैसे - पशु-पक्षियों की बोलियाँ, बच्चे की प्रारम्भिक तुतलाहट आदि।

सभी वाग्व्यवहारों में केवल व्याकृता वाणी का ही प्रयोग होता है किन्तु नाटक या रूपक ही ऐसा काव्य-रूप है जिसमें अव्याकृता वाणी का भी प्रयोग किया गया है जैसे- अभिज्ञान-शाकुन्तल में कोकिल का कूजन आदि।

कुन्दमालानाटक की भाषा कितनी सरल है, सुबोध है तथा सरस है। इसकी शैली कितनी प्राञ्चल है, प्रकृति के मानीकरण में सौहार्द स्थापित करने में दक्षतापूर्ण है। नाटक के प्रथम अङ्क में अपनी काव्यभाषाशैली के प्रसङ्ग में महाकवि दिङ्नाग के शब्दों में अनिरुक्ता, अव्यकृता गङ्गा के समीरवाणी को मुखरित किया है।

''आदय पङ्कजवनान्मकरन्दगन्धान्
कर्षन्नितान्तमधुरान् कलहंसनादान्।
शीतास्तरङ्गकणिका विकिटन्नुपैति
गङ्गनिलस्तव सभाजनकाङ्क्षयेव।।'' 1/5

अर्थात् गङ्गा का वायु कमलवन से पुष्परस सौरभ को लेकर अत्यन्त मधुर कलहंस के नादों को खींच रहा है, शीतल तरंग की विन्दुओं को विखेर रहा है और आपके सम्मान की ठच्छा से जैसे यहाँ तक आ रहा है।

वैदर्भी रीति एवं प्रसादगुण से युक्त यह शैली किसर सहृदय को अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर लेती। कालिदास ने भी इसी भावशैली पर अपना उद्गार व्यक्त किया है-

''दीर्घीकुर्वन् पटुमदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामेदिमैत्री कषाय:।।''

(हे मेघ! जिस विशाल नगरी में प्रात:काल सारस पक्षियों के मद से मधुर शब्द को विस्तृत करता हुआ, किससित कमलों के सुगन्ध के संसर्ग से सुगन्धित शरीर को सुख देनेवाला शिप्रानदी का वायु रतिक्रीड़ा में मधुर-मधुर बोलनेवाले प्रेमी के समान सम्भोग को दूर करता है।)

वैसे ही लक्ष्मण की उक्ति से कुन्दमाला के कवि गङ्गा की लहर, जल-कणिकाओं से युक्त शीतल वायु को सम्बोधित कर रही है। महाकवि ने यहाँ अपनी प्रकृति के मानीकरण करते हुए सरसभाषा शैली की मधुरिमा को अपनाया है।

सलिल कणिकाओं से पूरिपूर्ण शीतल वायु है। वह शीलतवायु गङ्गतरङ्ग के द्वारा सम्बोधित किया जा रहा है। कलहंस उस जलतरङ्ग में मधुर स्वर से संगीत गा रहे हैं। यह छाया प्रिय सहेली की तरह सीताजी को हृदय से लगाकर आनन्द देती है।

इस प्रकार, इस शून्य वन में भी पूजनीया आर्या सीताजी परिजनों से युक्त प्रती होता हौ।

कहा भी जाता है-

''असंहार्यपरिच्छदा सुकृतिन:'' पुण्यवान् पपने प्रियजनों से सदा युक्त होते हैं। यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। शिखरिणी वृत है। पुन: उसी अङ्क के अष्टम श्लोक में भाषाशैली पर विचार किया गया है।

कहा गया है कि 'तथापि हृदयं गत्वा ग्रन्थिं बध्नाति भारती' आर्य के आदेश से, यत्नपूर्वक कहने से भी, वाणी हृदय में जाकर गाँठ बाँध देती है। इसी शैली के आलोक में कालीदास की वाणीमुखरित होती है- 'पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते' - सर्वत्र गुण अपना स्थान बना लेता है।

'समग्रगुणोपेता वैदर्भी' इस सिद्धान्त के अनुसार, महाकवि कालिदास के अनुसर्ता दिङ्नाग की भाषाशैली वैदभीरीति में रहने वाले समग्र गुणों को अपनानेवाली है। 'कुनदमाला' नाटक की भाषा प्रसादमयी है, उत्तरामचरित में व्यवहृत गौडीरीति के ओजगुण से रहित है, माधुर्यगुण एवं मधुर गीतों के स्वर में आबद्ध है।

वसन्ततिलका छन्द में प्रथम अङ्क के अठारहवें श्लोक में करुणरसा का दृश्य कितनी मार्मिक है-

''एते रुदन्ति हरिणा हरितं विमुच्य,
हंसाश्च शेकविधुरा: करुणं रुदन्ति।
नृत्यम् त्यजन्ति शिखिनोऽपिविलोक्य देवी,
तिर्यग्गता वरममी न परं मनुष्य।।'' 1/18

महाकविकालिदास ने इसी सरत-सरस-भाषाशैली को अपनाया है जिसकी विवृति पूर्व निर्दिष्ट है।

देवी सीता को देखकर हरिण हरे-भरे घासों को छोड़कर रो रहे है, शोकाकुल ये हंस परम दु:खी होकर नेत्रों से आँसू बहा रहे हैं। मयूर ने भी नृत्य कना छोड़ दिया है, पशु योनि में प्राप्त ये उत्तम है किन्तु मनुष्य नहीं है।

कुन्दमाला नाटक की शैली सामान्यजन के लिए भी सुबोध, सरल एवं सरस है। सर्वसाधारण लोग भी इनकी शैली के माधुर्य से वञ्चित नहीं रह सकते। दिङ्नाग का कुन्दमाला नाटक अपनी वाणी का प्रथम उस बाण के समान करता है जो अन्तस्तल तक पहुँचकर सहृदय-हृदय श्रोता को बींध डालता है। सहसा सहृदय के मुखारविन्द से वाणी नि:सृत होती है-

''किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मता।
परस्पर हृदये लग्नं न धूर्णयति गच्छिर:।।''

उस कवि की काव्यशैली से क्या लाभ, जिसकी वाणी सुनकर श्रोता झूम न उठे और उस धनुर्धर के बाण चलाने से क्या लाभ जिसके बाण की चोट खाकर भी आहत व्यक्ति चक्कर खाकर गिर न पड़े।
भाषा की परिभाषाएँ विभिन्न विद्वानों ने की है। पर महाकवि भारवि प्रदत्त भाषा की परिभाषा उसकी शैली पर प्रकाश डालती है। किरातार्जुनीय महाकाव्य के चौदवहें सर्ग के तीन श्लोकों में महाकवि ने कहा है-

''विविक्तवर्णाभरण सुखश्रुतिः प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम्।
प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्न गम्भीरपदा सरस्वती।।''किरात 14/3

स्वच्छ अक्षर जिसके भूषण हैं, सुनने में सुखकर शत्रुओं के भी हृदय को प्रसन्न करनेवाली वाचक और गम्भीरार्थक पदावली वाणी पुणयकर्म करनेवालों के मुख से ही निकलती है।
(जैसे स्वच्छ रूप और भूषणवाली मञ्जुभाषिणी शत्रुओं के भी हृदय को प्रसन्न करनेवाली सरस्वती पुण्यात्माओं को ही प्राप्त होती है।)
अतः यह भी कहने में कोई अत्युक्ति नहीं कि प्रत्येक पुरुष में भिन्न-भिन्न रुचि होने से सभी के लिए मनोहर वचन अत्यन्त दुर्लभ है - सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः।

1. भाषा कोई अर्थ व्यक्त करने का मौखिक सङ्केत है।
2. किसी विशेष अर्थ में किसी के मुखारविन्द से निःसृत वर्ण या वर्ण-समूह का प्रयोग किया जाता है उसे भाषा कहते हैं।
3. किसी को कुछ समझाने के लिए जो मुँह से वर्ण या वर्णसमूह का प्रयोग किया जाता है उसे भाषा कहते है
4. हाथ, पैर, नेत्र आदि अङ्गों के सङ्केत के साथ मुख से निकले हुए सार्थक समूह को भाषा कहते हैं।
5. मन के किसी भाव को दूसरे पर व्यक्त करने के लिए जिन मौखिक वर्ण सङ्केतों का प्रयो गकिया जाय, उनके समूह को भाषा कहते हैं।